विपश्यना

साधकों का
मासिक प्रेरणा पत्र

वार्षिक शुल्क रु. 30/-
आजीवन शुल्क रु. 500/-

बुद्धवर्ष 2557, माघ पूर्णिमा, 14 फरवरी, 2014 वर्ष 43 अंक 8

For Patrika in various languages, visit: http://www.vridhamma.org/Newsletter_Home.aspx

धम्मवाणी

पाणिम्हि चे वणो नास्स, हरेय्य पाणिना विसं।
नाब्बणं विसमन्वेति, नत्थि पापं अकुब्बतो॥

धम्मपद - १२४, पापवग्गो.

यदि हाथ में व्रण (घाव) न हो तो हाथ से विष को ले सकता है (क्योंकि) व्रणरहित (घावरहित) (शरीर में) विष नहीं चढ़ता है। (ऐसे ही) (पापकर्म) न करने वाले को पाप नहीं लगता।

कर्म-सिद्धांत और उनके फल

(यह लंबा पत्र पूज्य गुरुदेव ने बर्मा से भारत आकर बसे अपने छोटे भाई राधेश्याम को लिखा था। यह पत्र साधकों के लाभार्थ प्रकाशित किया जा रहा है, किसी की भावना को ठेस पहुँचाने की इच्छा से नहीं। - सं.)

रंगून, १०-९-१९६६

प्रिय राधे, आशीष!

तुम्हारा २९-८-६६ का पत्र मिला। इसके पूर्व भी एक पत्र में कर्म-सिद्धांत पर उठाये गये तुम्हारे प्रश्न का उत्तर देना बाकी है। पहले उसी प्रश्न से निपट लूं।

''मिलिंद प्रश्न'' में राजा मिलिंद ने भिक्षु नागसेन के सम्मुख यह प्रश्न उपस्थित किया था। मिलिंद के प्रश्न का नागसेन ने जो उत्तर दिया उसके मुताबिक यह सिद्ध हुआ कि जो बिना जाने पाप करता है, उसे अधिक पाप लगता है। मिलिंद के प्रश्न को और नागसेन के संक्षिप्त उत्तर को एक ओर रख कर हम इस जाने और अनजाने किये गये पापों के संबंध में जरा विस्तार से समझने का प्रयत्न करें। मैं इस समस्या को तीन भागों में बांट देना चाहता हूं।

सर्वप्रथम हम बुद्धकालीन उस अरहंत भिक्षु की चर्चा करें जो चक्षु-विहीन है और प्रातः ब्रह्म-मुहुर्त में उठ कर अपनी कुटिया के सामने घास के मैदान में चहल-कदमी करता हुआ अपनी स्मृति कायम रखता है। उसकी इस चहल-कदमी से धरती पर चलने वाली कुछ एक बीर-बहूटियां दब कर मर जाती हैं जिसकी उस भिक्षु को किंचित भी जानकारी नहीं होती। आसपास के लोग इस बात को देख कर भगवान के पास शिकायत लेकर जाते हैं कि अमुक भिक्षु चहल-कदमी करते हुए जीव-हिंसा के दोष का भागी बन रहा है। भगवान उन शिकायत करने वालों को फटकारते हुए उस भिक्षु को निर्दोष सिद्ध करते हैं। एक तो इसलिए कि वह चक्षु-विहीन है, अतः नहीं जानता कि उसके पांव के नीचे दब कर किसी भी जीव की हत्या हो गयी है। दूसरे वह अरहंत है, अतः उसके मन में किसी भी प्राणी की हिंसा करने की वृत्ति उत्पन्न ही नहीं हो सकती।

हमारे लिए पहला भाग ही अधिक महत्त्व का है क्योंकि अरहंत नहीं होने के कारण वही हमसे अधिक संबंधित है। हम भी इसी प्रकार अनजाने में कितने ही प्राणियों की हिंसा चलते-फिरते, उठते-बैठते, खाते-पीते और यहां तक कि श्वास लेते-छोड़ते हुए करते रहते हैं। मैं नहीं मानता कि यह हिंसा हमें किसी प्रकार के भी पाप का भागी बनाती है।

जब तक हिंसा करने के लिए हमारे मन में हिंसक वृत्ति नहीं उत्पन्न होती - ऐसी वृत्ति जो हमें सक्रिय हिंसा करने के लिए प्रेरित करती है और हिंसा कर लेने के बाद संतोष और प्रसन्नता का भाव प्रकट करती है - ऐसी हिंसक वृत्ति के अभाव में की गई हिंसा पापमयी हिंसा नहीं ही कही जा सकती। परंतु कुछ लोग हिंसा को खींच कर अतियों तक ले जाते हैं और उससे बचने के लिए कई प्रकार के उपक्रम करते हैं। वे नहीं समझते कि ऐसे उपक्रम सूक्ष्म हिंसा से बचा नहीं सकते, बल्कि बढ़ा भी सकते हैं। इसीलिए भगवान बुद्ध ने मध्यम मार्ग अपनाया। व्यक्ति यथासंभव सजग हो और उसके मन में हिंसक वृत्ति न हो, यही पर्याप्त है।

अब हिंसा का एक उदाहरण लें। बार-बार एक मक्खी या मच्छर हमारे मुँह के पास आकर भनभना जाता है। उसकी इस क्रिया से हमारा सिर भन्ना उठता है और क्रोध में झल्लाते हुए हम दोनों हाथों से ताली पीट कर उस मच्छर या मक्खी को मसल देने का प्रयत्न करते हैं। बार-बार के इस प्रयत्न से भी वह मच्छर या मक्खी हमारी ताली की पकड़ में न आये तो इससे हमारी झुंझलाहट और बढ़ती है। हम अधिक सचेष्ट होते हैं और किसी प्रकार प्रयत्न करके उसे आखिर पीस ही देते हैं। ऐसा कर लेने के बाद मन में एक प्रकार का आत्मसंतोष और आह्लाद उत्पन्न होता है। यह हिंसा हुई। अब इस हिंसा के दो भाग करें। एक व्यक्ति ऐसी हिंसा करते हुए यह नहीं जानता, मानता कि मैं पापकर्म कर रहा हूं। उसे इस कार्य में आह्लाद होता है और उसका मन बार-बार ऐसा करने के लिए प्रेरित होता है। एक अन्य व्यक्ति भी यही कर्म करता है, परंतु वह जानता है कि वह पापकर्म कर रहा है अतः क्रोध और झुंझलाहटवश हिंसा कर तो देता है पर जरा झिझकता है और हिंसा कर देने के बाद भी जरा-सा पश्चात्ताप करता है। अतः जितने क्षण वह झिझक में निकालता है अथवा पश्चात्ताप में निकालता है, उतने क्षण तो कुशल क्षण हैं, अकुशल नहीं। दूसरी ओर पाप न मानता हुआ बेझिझक और बिना पश्चात्ताप के हिंसा करने वाला व्यक्ति शत-प्रतिशत पाप का भागी है। अतः पहले से अधिक दोषी हुआ ही। नागसेन ने इसी को ध्यान में रख कर मिलिंद को उत्तर दिया होगा और इसी कारण मिलिंद संतुष्ट हुआ होगा।

बुद्ध की साधना में मन को बहुत महत्त्व दिया गया है - **''मनोपुब्बङ्गमा धम्मा, मनोसेट्ठा मनोमया''**। इसीलिए कायिक और वाचिक कर्मों की तुलना में मानसिक कर्म का महत्त्व अधिक माना गया है। हर एक कायिक और वाचिक कर्म को उस समय की हमारी मानसिक स्थिति से आंका-तोला जाता है और उसी के अनुसार पाप या पुण्य की मात्रा कम या अधिक मानी जाती है। इस परिप्रेक्ष्य में विभिन्न प्रकार की हिंसाओं के फल को समझा जा सकता है जैसे --

१- एक डाकू धन के लोभ में किसी राहगीर के पेट में चाकू मार कर उसकी हत्या कर देता है।

२- ऐसे ही कोई डॉक्टर ऑपरेशन थियेटर में किसी रोगी के पेट का ऑपरेशन करता है और ऐसा करते हुए रोगी की मृत्यु का कारण बन जाता है।

इन दोनों की मानसिक स्थिति में कितना बड़ा अंतर है। प्रकृति दोनों की मनोस्थिति के अनुकूल ही उनके कर्मों का फल देगी। इसमें कोई संदेह या दो राय नहीं हो सकती।

विश्वास है कर्म और कर्मफल की व्याख्या समझ में आ गयी होगी। यदि फिर भी कोई प्रश्न उठे तो दुबारा लिख कर पूछना चाहिए।

श्रावणी

पिछले दिनों श्रावणी का त्योहार आया और घर के सदस्यों के सामने यह प्रश्न खड़ा हुआ कि उच्च कोटि की बुद्ध की साधना करने वालों के लिए यह त्योहार कैसे मनाया जाना चाहिए और यदि बचना है तो इससे कैसे बचना चाहिए? पीढ़ियों का संस्कार है और जीवन भर का अपना अभ्यास है जो कि किसी भी परंपरा को तोड़ते हुए हमारे मन में हिचक पैदा करता है। जी चाहता है कि इन बेड़ियों में जकड़े ही रहें। अधिक नहीं तो मन में यही वितर्क उठते हैं कि यह तो एक धार्मिक त्योहार नहीं है और इस कारण इसे न मनाने की अथवा इसमें परिवर्तन करने की क्या आवश्यकता है?

हमारे त्योहारों की धार्मिक और सामाजिक रेखा इतनी क्षीण है कि इसे स्पष्ट करके देखा भी नहीं जा सकता। सामाजिकता और धार्मिकता एक-दूसरे में गड्ड-मड्ड होती रहती हैं। यही बात इस श्रावणी के त्योहार पर लागू होती है। अपने घरों में इस त्योहार मनाने की रस्म को तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं --

१. नया यज्ञोपवीत धारण करना।

२. गृहद्वार पर देवी-देवताओं के नाम का शकुन लिख कर उसे जिमाना।

३. ब्राह्मणों तथा घर की बहन-बेटियों के द्वारा अपनी कलाई पर राखी बँधवाना और उन्हें दक्षिणा देना।

१. यज्ञोपवीत -

न जाने यज्ञोपवीत धारण करने की प्रथा कब और क्यों चालू हुई? हां, इतना निश्चित है कि वैदिक काल से इसका प्रचलन है। वैदिक काल में कर्म-कांडों को लेकर जितना बड़ा महत्त्व इस यज्ञोपवीत को दिया गया, आज यज्ञ न करते हुए भी अधिकांश हिंदू परंपरा-वश उसे उतना ही महत्त्व देते हैं और इसीलिये यज्ञ करने के अधिकारी ऊपरी तीनों वर्ण ही इसे धारण करते हैं। चौथा वर्ण इसका अधिकारी नहीं माना जाता। स्पष्ट है कि ये तीनों ऊपरी वर्ण जन्म के कारण माने जाने वाले वर्ण हैं न कि कर्म के कारण। कोई इसलिए ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य है कि वह संयोगवश उस-उस जाति में जन्म पा चुका है और महज इसीलिए वह यज्ञोपवीत धारण करने का अधिकारी भी है।

बुद्धकालीन मान्यता इस अविवेकपूर्ण समाज विभाजन को स्वीकारने के लिए तैयार नहीं है और इसीलिए इस विभाजन के प्रतीकस्वरूप इस यज्ञोपवीत को भी स्वीकारने के लिए तैयार नहीं। अतः इसको धारण करना किसी भी बुद्धानुयायी के लिए सर्वथा असंगत है। हमारे यहां ब्राह्मण उसे मानते हैं जिसने कि शमथ अथवा विपश्यना की भावना द्वारा अपने चित्त को राग और द्वेष से सर्वथा विमुक्त करके उसे ब्रह्मा के चित्त के समान विशुद्ध बना लिया हो, भले वह किसी शूद्राणी मां की कोख से जन्मा हो अथवा ब्राह्मणी मां की कोख से।

२- गृहद्वार पर शकुन

प्रथा है कि घर के मुख्य द्वार आदि पर देवी-देवताओं के नाम लिखे जाते हैं और सायं पूर्व इन शकुनों (नामों) को मिष्ठान्न की बलि दी जाती है यानी चढ़ावा चढ़ाया जाता है। मुझे लगता है कि कभी देश में घर-घर ध्यान भावनाएं प्रचलित थीं और देश के विभिन्न लोग विभिन्न प्रणालियों का प्रतिपादन करते थे। ऐसे लोग जो कि उच्च कोटि की ब्रह्ममयी साधना अथवा लोकोत्तरी विपश्यना साधना नहीं कर पाते थे, वे देव साधनाओं से संतुष्ट रहते थे। देव या प्रेत साधना लगभग सभी देशों में होती है। बर्मा में भी घर-घर में नाट की पूजा होती है यद्यपि बर्मी लोग अपने आपको शुद्ध स्थविरवादी बौद्ध कहते हैं। यह महज इसलिए होता है कि उच्च कोटि की ब्रह्ममयी साधना अथवा लोकोत्तरी विपश्यना साधना बहुत सरल नहीं है और न ही इन साधनाओं को सिखाने वाले सद्गुरु आसानी से प्राप्त हैं।

ऐसी अवस्था में जन-साधारण का देवी-देवताओं की उपासना में लग जाना स्वाभाविक है। इन्हें हम भूमट्ठ (भूमस्थ) देव कहते हैं। लेकिन मनुष्य कभी यह मानने के लिए तैयार नहीं है कि वह जिस देव की पूजा कर रहा है, वह परमेश्वर की श्रेणी का नहीं है। उपासक के लिए तो उसका उपास्य देव परमोच्च परमेश्वर ही है। ऐसा हुए बिना उसकी श्रद्धा अडिग नहीं रह सकती। परंतु कभी-कभी ऐसा भी होता है कि उपासक अपने उपास्य देव को किसी महान देव या ईश्वर का अवतार अथवा पायक (सेवक) मान कर उसकी पूजा करता है। पायक जैसे कि हनुमान को राम का, गणेश, कार्तिकेय, भैरव, काली आदि को शिव का और श्यामजी आदि को कृष्ण का पायक कहा गया। ऐसे ही बर्मा में नाटगण बुद्ध के पायक मान कर पूजे जाते हैं।

इस प्रकार की उपासना करने वाले लोग अपना और अपने घरों का संरक्षण ऐसे पायकों के हवाले करना चाहते हैं। अतः घर के द्वारों पर देवी-देवताओं के नाम लिख कर जिन शकुनों की स्थापना की जाती है, वह मुख्यतः ऐसे पायकों को द्वारपाल के रूप में स्थापित करने की परंपरा के कारण ही है। यह अलग बात है कि ऐसा करने से सचमुच कोई पायक देव द्वार-रक्षक बनता भी है या नहीं।

इसी परिप्रेक्ष्य में उच्च कोटि की ब्राह्मी अथवा विपश्यना साधना के मार्ग पर दृष्टिपात करें। बुद्ध ने समस्त लोकों को रचने वाले किसी स्रष्टा ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार नहीं किया, परंतु असंख्य कोटि देवी-देवताओं और ब्रह्माओं के अस्तित्व को स्वीकार ही नहीं किया बल्कि सिद्ध भी किया। भगवान स्वयं केवल मनुष्यों के ही शास्ता यानी गुरु नहीं थे बल्कि देव-ब्रह्माओं के भी थे।

वे सारे देव और ब्रह्मा जो कि भगवान बुद्ध से ध्यान भावना सीख कर उन्नत अवस्था प्राप्त हैं, वे जहां कहीं भी कोई बुद्ध के उपासक उच्च कोटि की ध्यान भावना करते हैं, वहीं अपनी कृतज्ञता प्रकाशन हेतु उनके संरक्षण और सहयोग के लिए आ उपस्थित होते हैं।

३- रक्षाबंधन

इस प्रथा की शुरुआत के संबंध में बहुत खोजबीन नहीं की गयी है। लेकिन एक अनुमान है कि यह भारत के तांत्रिक युग की उपज है। इस युग में लोग तंत्र साधना द्वारा छोटे-मोटे प्रेतों और निम्न कोटि के देवों को अपने वश में कर लिया करते थे और किसी की कलाई पर सूत्र बांधते हुए रक्षा-मंत्रों का उच्चारण कर उन देवों को संरक्षण का भार सौंपते रहे होंगे। यह कार्य अधिकांशतः समाज का पुरोहित वर्ग करता होगा और संभवतः महिलाएं भी इस तांत्रिक क्षेत्र में सिद्ध रही होंगी। बहनों को अपने भाइयों के प्रति नैसर्गिक स्नेह होने के कारण उनकी सुरक्षा के लिए इन देवों को संरक्षक बना कर रक्षाबंधन का उपक्रम किया जाता रहा होगा। इसी प्रकार ब्राह्मणों द्वारा अपने यजमानों का भी। शनैः शनैः वह तांत्रिक परंपरा समाप्त हो गयी और ब्राह्मणों और स्त्रियों की मंत्र-सिद्धि भी। अब बच रहा उस पुरानी परंपरा के प्रतीकस्वरूप यह रक्षाबंधन का धागा जिसका कि सचमुच कोई मंत्र-सिद्ध उपयोग नहीं रह गया। किसी के बांधे हुए रक्षाबंधन के सूत्रों में वस्तुतः संरक्षण की शक्ति हो, ऐसा मानना मुश्किल है। अतः इसे केवल लकीर पीटना ही कहा जायगा।

अब हम भी किसी की भी रक्षा को बुद्ध की साधना के दृष्टिकोण से देखें। यह सच है कि बुद्धकालीन मान्यता में भी बहुत से देव-ब्रह्माओं का आह्वान किया जाता है जो कि संबंधित व्यक्ति की रक्षा का भार उठाते हैं। लेकिन भगवान के उपदेशों को यदि

ध्यान से मनन किया जाय तो स्पष्ट जाहिर होता है कि मनुष्य का संरक्षण स्वयं उसके अपने किये हुए पुण्यकर्म ही करते हैं। यदि कोई स्वयं दुश्चरित्र है तो दुःख उसके पीछे वैसे ही लग जाता है जैसे कि बैलगाड़ी में जुते हुए बैल के पीछे उस गाड़ी का चक्का।

अतः यदि किसी को अपनी सुरक्षा करनी है तो वह कायिक, वाचिक और मानसिक कुशल कर्मों का संपादन करे। उसके अतिरिक्त यदि उसने कायिक, वाचिक और मानसिक दुष्कर्म किये हैं तो वह उन्हें भगवान के आदेशानुसार विपश्यना साधना द्वारा आतापित होकर तपा ले, गला ले, कर्म-बीजों को भून ले जिससे कि वे अंकुरित होकर फलित-फूलित न हो सकें। ऐसा कर लेने पर मनुष्य अपनी सुरक्षा आप करता है। कालांतर में एक श्लोक प्रचलित हो गया, जिसका एक चरण है - **''धर्मो रक्षति रक्षितः'',** यह पदांश बुद्ध की शिक्षा के शत-प्रतिशत अनुकूल है। रक्षा किया हुआ धर्म ही हमारी रक्षा करता है। यदि हमने धर्म का संरक्षण किया यानी शील, समाधि और प्रज्ञा का संपादन किया है तो हमारे शुभ कर्मों द्वारा उत्पन्न ये कुशल धर्म, ये कुशल चित्तवृत्तियां स्वयं ही हमारा संरक्षण करेंगी। स्वयं द्वारा संपादित कुशल चित्तवृत्तियां ही बहुधा मूर्तरूप (Personified) ले लेती हैं। अधिकांशतः होता यह है कि बिना हमारे आह्वान किये भी वे सारे सम्यक देव-ब्रह्मा जो कि हमारे पूर्व जन्मों में संचित पुण्य-पारमिताओं में सहयोगी और साथी रहे हैं, वे अवसर-कुअवसर पर हमारी सुरक्षा करते रहते हैं, बशर्ते कि हम शील, समाधि और प्रज्ञासंपन्न रहें।

इस सच्चाई को समझ लेने के बाद भी यदि कोई व्यक्ति समझता है कि किसी के द्वारा रक्षासूत्र बांध दिये जाने से ही उसकी सुरक्षा हो जायगी तो इसे भ्रांति और मिथ्यादृष्टि ही कहा जायगा। यदि बहन को अपने भाई से स्नेह है और वह अपने भाई की सुरक्षा के लिए आतुर है तो उसे चाहिए कि पहले तो अपनी सुरक्षा के लिए शील, समाधि और प्रज्ञा का स्वयं संपादन करे और दूसरे अपने भाई को भी ऐसा करने के लिए प्रोत्साहन दे। इसी प्रकार रक्षाबंधन बांध कर यदि वह भाई से अपनी सुरक्षा की अपेक्षा रखती है तो भी उसके लिए एक ही मार्ग है कि एक ओर तो वह अपने स्वयं के लिए शील, समाधि और प्रज्ञा का संपादन करे और दूसरी ओर अपने भाई को भी इसके लिए प्रेरित करे।

यह बात सबके मन में घर कर जानी चाहिए कि अपने द्वारा रक्षित धर्म ही हमारी रक्षा करेगा। यदि हम धर्म का हनन करेंगे तो धर्म हमारा नाश कर देगा। अर्थात यदि हम दुःशील, दुःसमाधिस्थ और दुष्प्रज्ञ होंगे तो हमारा सर्वनाश निश्चित है। न हमें कोई देव-ब्रह्मा बचा सकता है न किसी के द्वारा बांधे गये मंत्र-सिद्ध अथवा मंत्र-असिद्ध रक्षा के धागे। यही मूल मंत्र होना चाहिए कि - **''धर्म एव हतो हन्ति, धर्मो रक्षति रक्षितः''** - हनन किया हुआ धर्म हमारी हत्या करता है और रक्षा किया हुआ धर्म हमारी रक्षा करता है। यही सम्यक दृष्टि है, बाकी सब मिथ्या दृष्टि। इसलिए ऐसे त्योहारों के अवसर पर शील पालन, दान एवं अधिक से अधिक विपश्यना साधना करने में ही हमारा मंगल समाया हुआ है।

मिथ्या दृष्टि की बात चली तो एक बात और ध्यान में आई जिसे लिख देना समयानुकूल समझता हूं। हमारे यहां घरों में किसी भी तीज-त्योहार पर गृह-देवियों द्वारा हाथों में अथवा पैरों में मेंहदी रचाने की प्रथा है। मैं इसमें कोई मंत्र-सिद्ध देवी-देवताओं से संबंधित परंपरा का समावेश नहीं देखता। यदि कभी रहा हो तो शायद हो भी। परंतु मुझे तो ऐसा लगता है कि यह शुद्ध रूप से शृंगार का एक प्रसाधन रहा है। हर स्त्री अपने पति को आकर्षित करने के लिए अपने बनाव-शृंगार के प्रति सचेष्ट रहती है और अन्य शृंगारिक प्रसाधनों की भांति मेंहदी भी ऐसा ही एक प्रसाधन है और चूंकि विधवा स्त्री को शृंगार-सजावट मना है, इसलिए मेंहदी लगाना उसके लिए वर्जित है। हुआ यह कि कालांतर में मेंहदी लगाना और न लगाना, इसके बीच एक गहरी रेखा खींच दी गई - जो सधवा स्त्रियां हैं वे मेंहदी लगाएं और जो विधवा हैं वे न लगाएं। इस विभाजन रेखा ने मूल दृष्टिकोण को बहुत कुछ बदल दिया और धीरे-धीरे मेंहदी सुहाग का एक चिह्न हो गयी और किसी तीज-त्योहार पर मेंहदी न लगायें तो उसे अपशकुन माना जाने लगा और अनिष्ट की आशंका से कोई भी सधवा गृहदेवी ऐसे अवसर पर मेंहदी लगाये बिना नहीं रह सकती।

यही बात माथे की बिंदी, मांग के सिंदूर और हाथ की चूड़ियों पर भी लागू होती है। ये सभी शृंगार के प्रसाधन हैं और अब बहुत डेलिकेट सुहाग चिह्न बन गये हैं जिनमें से किसी एक का भी न होना गृहिणी को अपने पति के प्रति अनिष्ट की आशंका से कंपायमान कर देता है। मिथ्या दृष्टि ने किस प्रकार अपनी गहरी जड़ें जमा ली हैं; गृहिणी सोचती है कि यदि आज मैंने मांग में सिंदूर नहीं डाला, माथे पर बिंदी नहीं लगायी, हाथों में चूड़ियां नहीं पहनीं अथवा किसी पर्व पर मेंहदी नहीं लगायी तो भारी अपशकुन हो गया और उसके प्रिय पति का जीवन खतरे में हो गया।

सम्यक दृष्टि वाले बुद्ध के साधकों को ऐसी मिथ्या दृष्टि से बचना चाहिए। यहां भी वही बात है। पति का दीर्घ जीवन उसके अतीत और वर्तमान के कर्मों पर निर्भर है। पत्नी का सधवा रह कर सुखी रहना अथवा विधवा होकर दुःखी हो जाना उसके अपने कुशल और अकुशल कर्मों पर निर्भर है। यदि गृहिणी चाहती है कि उसका पति सुखी रहे तो उसे चाहिए कि अपने पति को शील, समाधि और प्रज्ञा के आर्य अष्टांगिक मार्ग पर आरूढ़ होने में प्रोत्साहन दे। यदि वह चाहती है कि स्वयं सुखी रहे तो उसे स्वयं भी शील, समाधि और प्रज्ञा के इस आर्य अष्टांगिक मार्ग पर दृढ़तापूर्वक आरूढ़ होना होगा। उसके पति को और अपने भावी सुख को न हाथों की मेंहदी बचा सकती है, न मांग का सिंदूर बचा सकता है, न माथे की टिकुली बचा सकती है और न हाथों की चूड़ियां ही बचा सकती हैं।

एक ही बात है - **''धर्मो रक्षति रक्षितः''** और यही सम्यक दृष्टि है। सब प्रकार की मिथ्या दृष्टियों से, रूढ़ियों से, अंध-विश्वासों से, शील-व्रत परामर्श की परंपराओं से बचना ही बुद्ध का सच्चा मार्ग है। किसी भी तीज-त्योहार, धार्मिक व सामाजिक उत्सव को मनाते हुए हमें भगवान की इस अमूल्य वाणी को मार्ग-निर्देशिका की भांति स्मरण रखना चाहिए --

सारञ्च सारतो ञत्वा, असारञ्च असारतो।
ते सारं अधिगच्छन्ति, सम्मासङ्कप्पगोचरा।।

-- धम्मपद १२, यमकवग्गो

-- जो सार को सार जानते हैं और असार को असार, ऐसे सच्चे संकल्प में लगे हुए लोग ही सार को प्राप्त करते हैं। जबकि असार के पीछे पड़े हुए लोग तो मिथ्या-दृष्टि की मृग-मरीचिका का ही चक्कर काटते रहते हैं।

-- साशिष, **स.ना.गो.** --

(पत्र को प्रकाशन योग्य बनाने के लिए कुछ सुधार किया गया है। - सं.)

2014 में निम्न अवसरों पर पूज्य माताजी के सान्निध्य में एक दिवसीय महाशिविर

बुद्धपूर्णिमा, रविवार, 18 मई, आषाढ़ी पूर्णिमा, रविवार, 13 जुलाई तथा **पूज्य गुरुदेव की पुण्य-तिथि** के उपलक्ष्य में **रविवार 28 सितंबर को; समयः** प्रातः **11** बजे से अपराह्न **4** बजे तक, **'ग्लोबल विपश्यना पगोडा'** में। यहां 3 बजे दिवंगत गुरुदेव के रेकार्डेड प्रवचन में बिना साधना किये लोग भी बैठ सकते हैं। बुकिंग के लिए कृपया निम्न फोन नंबरों या ईमेल से शीघ्र संपर्क करें। कृपया बिना बुकिंग कराये न आएं। बुकिंग **संपर्क**: फोन नं.: 022-28451170 / 022-33747501- Extn. 9, 022-33747543 / 33747544, **(फोन बुकिंग :** प्रातः **11** से सायं **5** तक, प्रतिदिन) **Online Registration: www.oneday.globalpagoda.org**

Registered No. NSK/235/2012-2014

WPP Postal License No. AR/Techno/WPP-05/2012-2014

'ग्लोबल विपस्सना पगोडा' की भूमि में श्रीलंका के "जयश्री महाबोधि" वृक्ष के रोपण का ऐतिहासिक सुअवसर

ढाई हजार से अधिक वर्ष पहले सिद्धार्थ गौतम भारत में एक पीपल के वृक्ष के नीचे बोधि प्राप्त करके सम्यक संबुद्ध बने। इतिहास में वह वृक्ष पूज्य हो गया और उसे सम्मानपूर्वक **'महाबोधि वृक्ष'** कहा जाने लगा। बोधि का अर्थ होता है ज्ञान। इस वृक्ष के नीचे ही सम्यक संबुद्ध ने चार आर्यसत्यों को जाना था।

इसके ढाई शताब्दी बाद महान अशोक के काल में श्रीलंका के राजा देवानां पियतिस्स ने वहां बोधिवृक्ष लगाने की आवश्यकता समझी। उसके निश्छल अनुरोध पर अशोक ने इस पवित्र 'महाबोधि वृक्ष' का एक पौधा भारत से श्रीलंका भेजा था, जो पुरानतम वृक्ष-स्वरूप आज तक फल-फूल रहा है और बुद्ध की वैज्ञानिक शिक्षा के पथ पर लोगों को चलने और दुःख से मुक्त होने के लिए प्रेरित कर रहा है। यह अनुराधपुर में है और इसे **'जयश्री महाबोधि'** कहते हैं।

विपश्यना के प्रधान आचार्य पू. श्री सत्यनारायण गोयन्का जी की यह इच्छा थी तथा ग्लोबल विपस्सना फाउंडेशन न्यास के धर्म परिवार की भी यह महत्त्वपूर्ण इच्छा है कि यहां आने वाले लोग प्रभावी ढंग से धर्म-पथ पर चलने के लिए प्रेरित हों, इसीलिए श्रीलंका से **'जयश्री महाबोधि'** की एक शाखा यहां लाने के लिए संपर्क किया गया। इस वृक्ष का भारत तथा विश्व के लिए बहुत बड़ा ऐतिहासिक महत्त्व है। इसीलिए आदरणीय भदन्त अटमस्थानाधिपति नायक डॉ० पल्लेगम सिरिनिवास नायक थेर, कुछ अन्य आदरणीय भिक्षुओं एवं उपासकों के साथ, इस शताब्दी में पहली बार उस वृक्ष की शाखा यहां वापस ला रहे हैं, जिसके नीचे बुद्ध ने ज्ञान प्राप्त किया था। इसका **रोपण समारोह २ मार्च, २०१४** को ग्लोबल विपस्सना पगोडा के परिसर में **प्रातः ९ से १०-४५** बजे के बीच होगा। सभी साधक इस समारोह में भाग लेने के लिए सादर आमंत्रित हैं।

इस अवसर पर होने वाले **संघ-दान** में सम्मिलित होने के इच्छुक व्यक्ति **संपर्क** करें-- श्रीमती मधुबेन पी. सावला, इगतपुरी या.श्रीमती अमीता पारेख, मुंबई. मो. 9820076958, Eamil: amita.a.parekh@gmail.com

---

Additional Responsibilities:

Teachers

1-2. Mr. Martin & Mrs. Deni Stephens; To assist the Co-ordinator Area Teacher in serving Non- Centre courses in Portugal

3-4. Mr. Steve & Mrs. Olwen Smith; To assist the Co-ordinator Area Teacher in serving Non-Centre courses in Ireland

5. Mr. Kenneth Truedsson; To assist the Co-ordinator Area Teacher in serving Non-Centre courses in Norway, Denmark & Finland

6-7. Mr. Heinz Bartsch & Mrs. Brunhilde Becker; To assist the Co-ordinator Area Teacher in serving Non-Centre courses in Austria

8-9. Mr. Klaus & Mrs. Edith Nothnagel; To assist the Co-ordinator Area Teacher in serving Non-Centre courses in Poland

10. Ms. Andrea Schmitz; To assist the Co-ordinator Area Teacher in serving Non-Centre courses in Ukraine, Kirgistan, Latvia

Senior Assistant Teachers

1-2. Mr. Arthur Rosenfeld & Mrs. Ana Teixido; To assist Mr. Dirk Taveirne & Mrs. Mieke De Wilde in serving Non-Centre courses in the Netherlands

3-4. Dr. Teun Zuiderent & Dr.(Mrs.) Sonja Jerak; To assist the Co-ordinator Area Teacher in serving Non-Centre courses in Slovenia, Croatia, Serbia

5.Ms. Andrea Gerber; To assist the Co-ordinator Area Teacher in serving Non-Centre courses in Turkey

6-7. Mr. Kostas Lempidakis & Mrs. Claudia Hackfort; To assist the Co-ordinator Area Teacher in serving Non-Centre courses in Greece;

8-9. Mr. David & Mrs. Line Lander; To assist the Co-ordinator Area Teacher in serving Non-Centre courses in Hungary, Estonia

10-11. Mr. Thomas & Mrs. Heike Willburger; To assist the Co-ordinator Area Teacher in serving Non-Centre courses in Bulgaria

12. Mr. Sigitas Baltramaitis; To assist the Co-ordinator Area Teacher in serving Non-Centre courses in Lithuania

Assistant Teachers

1. Mr. Michael Vatter; To assist the Co-ordinator Area Teacher in serving Non-Centre courses in Czech Republic

नव नियुक्तियां

सहायक आचार्य

१. श्रीमती मंगला दहिवेले, औरंगाबाद
२. श्री पंजाबराव रायबोले, औरंगाबाद
३. श्री प्रीतिकमल पाटिल, चंद्रपुर
४. श्री प्रेमलाल साखरे, दुर्ग
५. श्री रविकुमार मेदी, नांदेड
६. श्री केशवलाल पटेल, नवसारी

(**बालशिविर शिक्षक अगले अंक में**)

दोहे धरम के

धर्म जगत का ईश है, धर्म ब्रह्म भगवान।
धर्म सदा रक्षा करे, धर्म बड़ा बलवान॥

पुत्र न रक्षा कर सके, पिता न माता भ्रात।
कौन बचा पाए भला, काल करे जब घात?

अपनी रक्षा आप कर, छोड़ परायी आस।
जो तू निज रक्षा करे, देव ब्रह्म सब पास॥

प्रज्ञा नित जाग्रत रहे, शील गंग के तीर।
धर्म सदा करता रहे, रक्षा तेरी वीर॥

केमिटो टेक्नोलॉजीज (प्रा०) लिमिटेड

८, मोहता भवन, ई-मोजेस रोड, वरली, मुंबई- 400 018
फोन: 2493 8893, फैक्स: 2493 6166
Email: arun@chemito.net
की मंगल कामनाओं सहित

दूहा धरम रा

राख धरम रो आसरो, राख धरम री टेक।
सुख मँह दुख मँह सरवदा, जागै धरम विवेक॥

अपणो चित सुधर्‌ये बिना, कोइ न आवै काम।
अपणै चित पर बावळा! करड़ी राख लगाम॥

इंद्र बजावै हाजरी, देवां चाकर होय।
जो तू अपणै चित्त रो, आपै मालिक होय॥

कुण देवी, कुण देवता, ईस ब्रह्म भगवान।
आडो आवै फळ पक्यां, भुगत स्वयं नादान॥

मोरया ट्रेडिंग कंपनी

सर्वो स्टॉकिस्ट - इंडियन ऑईल, ७४, सुरेशदादा जैन शॉपिंग कॉम्प्लेक्स, एन.एच.६, अजिंठा चौक, जलगांव - ४२५ ००३, फोन. नं. ०२५७-२२१०३७२, २२१२८७७
मोबा.०९४२३१८७३०१, Email: **morolium_jal@yahoo.co.in**
की मंगल कामनाओं सहित

'विपश्यना विशोधन विन्यास' के लिए प्रकाशक, मुद्रक एवं संपादक: राम प्रताप यादव, धम्मगिरि, इगतपुरी-422 403, दूरभाष : (02553) 244086, 244076.
मुद्रण स्थान : अक्षर चित्र प्रिंटिंग प्रेस, 69- बी रोड, सातपुर, नाशिक-422 007. **बुद्धवर्ष 2557, माघ पूर्णिमा, 14 फरवरी, 2014**

वार्षिक शुल्क रु. **30/-,** US $ 10, **आजीवन शुल्क** रु. **500/-,** US $ 100. **'विपश्यना' रजि. नं. 19156/71. Registered No. NSK/235/2012-2014**

WPP Postal Licence No. AR/Techno/WPP-05/2012-2014
Posting day- **Purnima of Every Month,** Posted at **Igatpuri-422 403,** Dist. Nashik (M.S.)

If not delivered please return to:-

विपश्यना विशोधन विन्यास
धम्मगिरि, इगतपुरी - 422 403
जिला-नाशिक, महाराष्ट्र, भारत
फोन : (02553) 244076, 244086, 243712,
243238. **फैक्स :** (02553) 244176
Email: info@giri.dhamma.org
Website: www.vridhamma.org